वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 32 (वीर नि. संवत् - 2540) 371 अंक : 11

आयु रही अब थोड़ी...

आयु रही अब थोरी कहा करै मोरी मोरी।।टेक।।
मात तात परलोक सिधारै, पास रही ना गौरी।
सुत मित बाँधव राज संपदा, छिन-छिन विनशत सो री,
फेर नहीं मिलत बहोरी।।1।।
तन पिंजर अब जरजर दीखत, लाल पडे मुख ओरी।
रींट गींट कफ मिटते नाहीं, दांत दाढ जड़ छोरी,
सहे दुख दरद घनोरी।।2।।
रोग पिशाच लगे तन भीतर, अग्नि भई मंदोरी।
वात पित्त कफ नित घटबढ हैं, यों बहु विपति सहोरी,
कहत नहीं आवै ओरी।।3।।
कर पग कंपत नाड दरद सिर, कमर कूब निकसो री।
लकड़ी डिंगत हाथ डोकर के, तो भी समझे न घोरी,
याकी मति मोह मरोरी।।4।।
या विधि परख पिछान 'जौहरी', तनसे ममत तजो री।
आपही आप रमो निज उरमें, आय मिले शिव गोरी।
होय परमानन्द बहोरी।।5।।

– कविवर पण्डित जौहरीजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(22) जैसे सांसारिक रुचि के लिए एक ही बात का बारम्बार परिचय करने में उसके प्रति अरुचि या उकताहट नहीं होती; इसीप्रकार इस अपूर्व सत् की रुचि के लिए बारम्बार सत् का बहुमान करके उसके श्रवण-मनन के प्रति उत्साह बढाना चाहिए। यदि उसमें अरुचि या उकताहट प्रतीत हो तो समझना चाहिए कि अपनी रुचि में कमी है। जैसे दो माह में सालभर के लिए कमाई कर लेने का उत्साह होता है; उसीप्रकार अल्पकाल में अनन्तभवों का अभाव करनेवाली सम्यक्श्रद्धा के प्रति उत्साह छलकना चाहिए।

- आत्मधर्म : मई 1978, पृष्ठ 12

(23) जब देवरानी-जिठानी को अलग होना होता है तो पहले वे एक-दूसरे की बुराई करने लगती है - यह उनके अलग होने का लक्षण है। इसीप्रकार ज्ञान में राग के प्रति तीव्र अनादर भाव जागृत होना ज्ञान और राग के बीच भेदज्ञान होने का लक्षण है। आत्मा में राग की गन्ध भी नहीं है। राग के जितने भी विकल्प उठते हैं, उनमें जलन है, दु:ख है, जहर है - ज्ञान में ऐसा निर्णय करने से भेदज्ञान प्रगट होता है। **- आत्मधर्म : जून 1978, पृष्ठ 16**

(24) आत्मस्वभाव का अनादर करके पुण्य-पाप की रुचि करना क्रोध है और आत्म-स्वभाव के आदर द्वारा पुण्य-पाप की रुचि छोड़ देना ही उत्तम क्षमा है।

- आत्मधर्म : जुलाई 1978, पृष्ठ 20

(25) अहो ! 'जिन' और 'जीव' एकाकार हैं। सभी आत्माएँ सिद्धिरूपी लता के कन्द हैं, एक-एक आत्मा अमृत की लता का फल है। अज्ञानी भले ही अपने को पर्याय जितना ही माने, किन्तु ज्ञानी तो कहते हैं कि वह व्यवहार से ही मनुष्यादि पर्यायरूप हुआ है, निश्चय से तो वह सिद्धसदृश ही है। **- आत्मधर्म : अगस्त 1978, पृष्ठ 19**

(26) अहो ! अडोल दिगम्बर वृत्ति को धारण करनेवाले, वन में वास करनेवाले और चिदानन्दस्वरूप आत्मा में डोलनेवाले मुनिवर जो छठवें-सातवें गुणस्थान में आत्मा के अमृतकुण्ड में झूलते हैं, उनका अवतार सफल है। ऐसे संत मुनिवर भी बारह भावनाएँ भाकर वस्तुस्वरूप का चिन्तवन करते हैं।

अहो ! तीर्थंकर भी दीक्षा के समय जिनका चिंतवन करें - ऐसी वैराग्यरस में झूलती हुई यह

बारह भावनायें भाते हुए किस भव्य को आनन्द नहीं होगा ? और किस भव्य को मोक्षमार्ग का उत्साह जागृत नहीं होगा ? **- आत्मधर्म : सितम्बर 1978, कवर पृष्ठ 3**

(27) आत्मा स्वयं ही परिपूर्ण स्वतंत्र प्रभु है, नित्य शरणभूत परमात्मा है। मोक्ष का मार्ग बाह्य में हो और मोक्ष आत्मा में हो अर्थात् कारण परपदार्थ में हो और कार्य आत्मा में हो - ऐसा त्रिकाल में भी नहीं होता। **- आत्मधर्म : अक्टूबर 1978, पृष्ठ 10**

(28) यह जीव लकड़ी, लोहा, अग्नि, पानी, बिजली आदि के स्वभाव का भरोसा करता है, दवाई की गोली का भरोसा करता है। जिनसे पर में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता, तो भी जीव उनका भरोसा करता है, तो जिसमें ज्ञान आदि अनन्त आश्चर्यकारी शक्तियाँ भरी हैं - ऐसे अचिन्त्य सामर्थ्यवान भगवान आत्मा का भरोसा क्यों नहीं करता ? करे तो उसका भव-भ्रमण छूट जाय।

- आत्मधर्म : नवम्बर 1978, कवर पृष्ठ 2

(29) जीभ चाहे जितने चिकने पदार्थों को ग्रहण करे तथापि स्वयं रूक्ष ही रहती है, उसी प्रकार ज्ञानी चाहे जैसे संयोगों के समूह में खड़ा हो तो भी अनासक्त ही रहता है। जिसप्रकार कमल निशदिन जल में रहता है, तथापि जल को स्पर्श नहीं करता, उसीप्रकार ज्ञानी संयोगों के मध्य में रहने पर भी लिप्त नहीं होता। जैसे सोना कीचड़ में पड़ा हो, तो भी उसे जंग नहीं लगती, उसीप्रकार ज्ञानी संयोगों में रहता हो तो भी उसे पर में एकत्वबुद्धि नहीं होती।

- आत्मधर्म : दिसम्बर 1978, कवर पृष्ठ 2

(30) संत कहते हैं कि हम अपने स्व-घर में आ गये - अब अनुकूलता की बर्फ में हमें नहीं गल जाना है तथा प्रतिकूलता की अग्नि में जलना भी नहीं है। हमारा ज्ञानविलास प्रगट हुआ है- उसमें हमने प्रवेश किया सो किया, अब हमें उससे बाहर निकालने में कोई समर्थ नहीं है।

- आत्मधर्म : जनवरी 1979, कवर पृष्ठ 2

(31) अहो ! प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपनी क्रमबद्धपर्याय से उत्पन्न होता हुआ उस-उस परिणाम में तद्रूप होकर उसे करता है, दूसरे परिणाम को नहीं करता, इस एक सिद्धान्त में छहों द्रव्यों के तीनों काल के परिणमन के हल की चाबी आ जाती है। **- आत्मधर्म : फरवरी 1979, पृष्ठ 21**

(32) अहो ! सम्यग्दृष्टि जीव छह-छह खण्ड के राज्य में खड़ा हो, तथापि उसके ज्ञान में किंचित् भी मचक नहीं आती कि यह मेरा है और छियानवे हजार अप्सरातुल्य रानियों के बीच में खड़ा हो, तथापि उसमें रंचमात्र भी सुखबुद्धि नहीं होती। अरे ! कोई नरक की भीषण वेदना के बीच पड़ा हो तो भी अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन की अधिकता छूटती नहीं। इस सम्यग्दर्शन का क्या माहात्म्य है, वह जगत को बाह्यदृष्टि से पहचानना कठिन है। **- आत्मधर्म : मार्च 1979, पृष्ठ 24**

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे)

व्यंजनावग्रह

व्यंजनावग्रह संबंधी सूत्र इसप्रकार हैं –

व्यञ्जनस्यावग्रहः ।।१८।।

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।।१९।।

अप्रगट पदार्थ का मात्र अवग्रह होता है। इस अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहतेहैं। चक्षु इन्द्रिय और मन के निमित्त से व्यंजनावग्रह नहीं होता।

अवग्रह दो प्रकार का होता है – व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह।

व्यंजन माने ढंका हुआ, अप्रगट, अव्यक्त। अप्रगट – अव्यक्त पदार्थ के ज्ञान को **व्यंजनावग्रह** कहते हैं और व्यक्त प्रगट पदार्थों के ज्ञान को **अर्थावग्रह ज्ञान** कहते हैं।

अप्रगट पदार्थों का मात्र अवग्रह (व्यंजनावग्रह) ज्ञान होता है; अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान नहीं होते।

चार इन्द्रियों द्वारा पहले व्यंजनावग्रह और पश्चात् अर्थावग्रह ईहा-अवाय-धारणा होते हैं। चक्षु और मन द्वारा सीधा अर्थावग्रह ज्ञान होता है। यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि व्यंजनावग्रह ज्ञान चक्षु और मन के निमित्त से नहीं होता; मात्र शेष चार इन्द्रियों के निमित्त से ही होता है।

इसप्रकार चार इन्द्रियों के निमित्त से होनेवाला व्यंजनावग्रह बारह प्रकार के पदार्थों को जानने के कारण ४८ प्रकार का होता है और अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा नामक ज्ञान, पाँच इन्द्रियों और मन से, बारह प्रकार के पदार्थों को जानने के कारण बहत्तर-बहत्तर प्रकार के हो गये। इसप्रकार ४८+७२+७२+७२+७२=३३६ इसप्रकार कुल मिलाकर मतिज्ञान ३३६ प्रकार का हो जाता है।।१८-१९।।

इसे निम्नांकित चार्ट से भलीभाँति समझा जा सकता है –

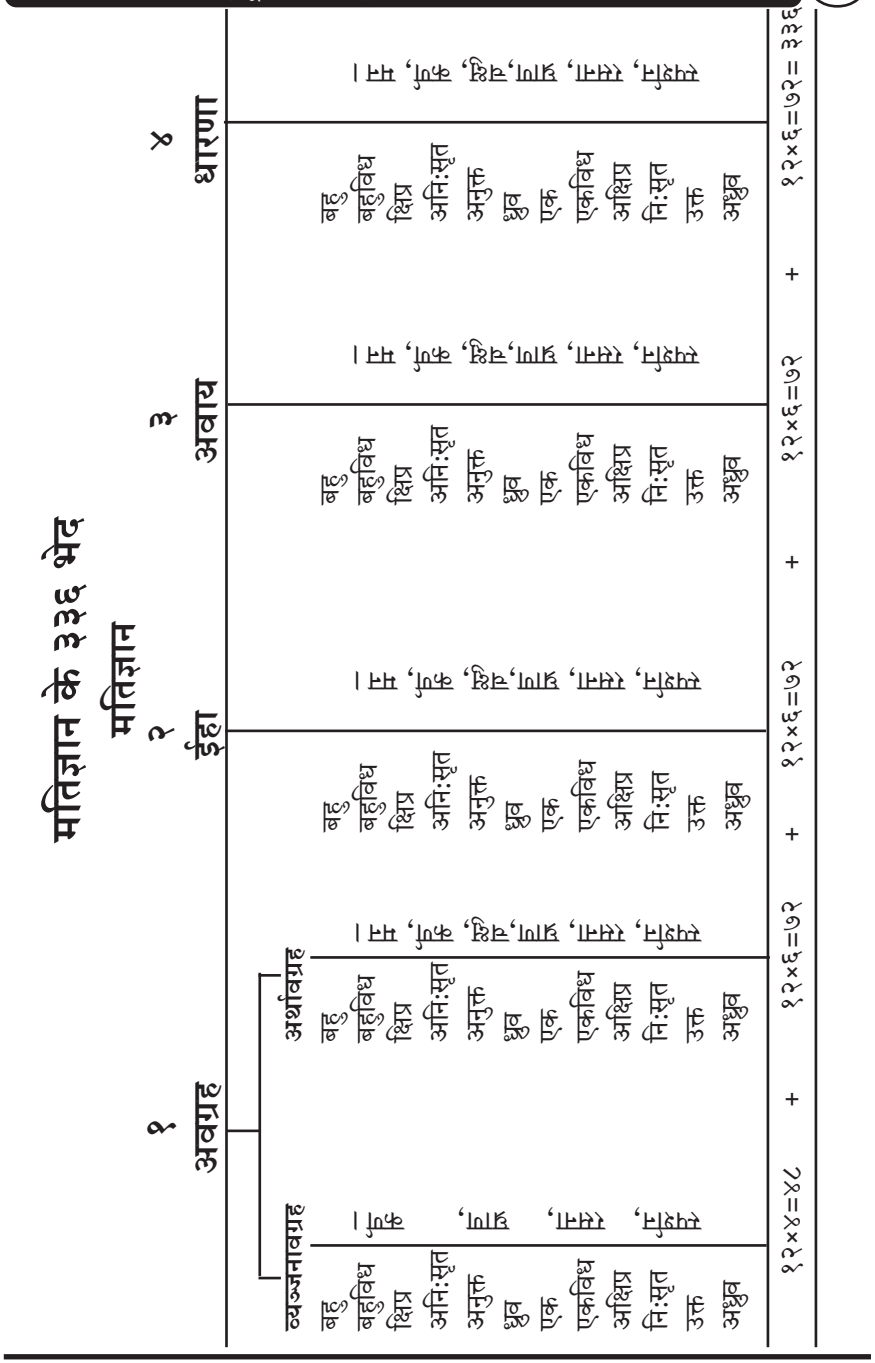

श्रुतज्ञान

सात सूत्रों में मतिज्ञान की चर्चा होने के उपरान्त अब **एक सूत्र में श्रुतज्ञान की चर्चा करते हैं।**

श्रुतज्ञान का स्वरूप बतानेवाला सूत्र इसप्रकार है –

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ।।२०।।

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। उसके मूल भेद दो हैं। पहले के अनेक और दूसरे के बारह भेद हैं।

अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट – ये दो श्रुतज्ञान के मूलभेद हैं।

अंगप्रविष्ट के बारह भेद इसप्रकार हैं –

१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, ६. ज्ञातृधर्मकथांग, ७. उपासकाध्ययनांग, ८. अन्त:कृद्दशांग, ९. अनुत्तरौपपादिक दशांग, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११. विपाकसूत्रांग और १२. दृष्टिवादांग।

श्रुत के कुल अक्षर **अठारह शंख, चवालीस पद्म, सड़सठ नील, चवालीस खरब, सात अरब, तीस करोड़, पिच्यानवै लाख, इक्यावन हजार, छह सौ पन्द्रह** (१८,४४,६७,४४,०७,३०,९५,५१,६१५) माने गये हैं।

इनमें मध्यम पद के **सोलह अरब, चौतीस करोड़, तिरासी लाख, सात हजार, आठ सौ अठासी** (१६,३४,८३,०७,८८८) अक्षरों का भाग देने पर **एक अरब, बारह करोड़, तिरासी लाख, अठावन हजार, पाँच** (१,१२,८३,५८,००५) मध्यम पद और **आठ करोड़, एक लाख आठ हजार, एक सौ पिचहत्तर** (८,०१,०८,१७५) अक्षर प्राप्त होते हैं।

आचारांग आदि बारह अंगों की रचना उक्त मध्यम पदों द्वारा की जाती है; इसलिए इनकी अंग्रप्रविष्ट संज्ञा है।

जो शेष अक्षर बचे थे, उनसे जिन शास्त्रों की रचना होती है; वे शास्त्र अंग बाह्य हैं।

यद्यपि इन अंगों और अंगबाह्यों की रचना गणधरदेव करते हैं; तथापि गणधरों के सिवाय अन्य ज्ञानी धर्मात्मा शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा जो शास्त्र रचे जाते हैं, उनका समावेश अंगबाह्य श्रुत में ही होता है।

इसप्रकार अंगबाह्य अनेक प्रकार का होता है।

आज बारह अंगों में से ग्यारह अंगों का ज्ञान तो लुप्त ही हो गया है। बारहवें

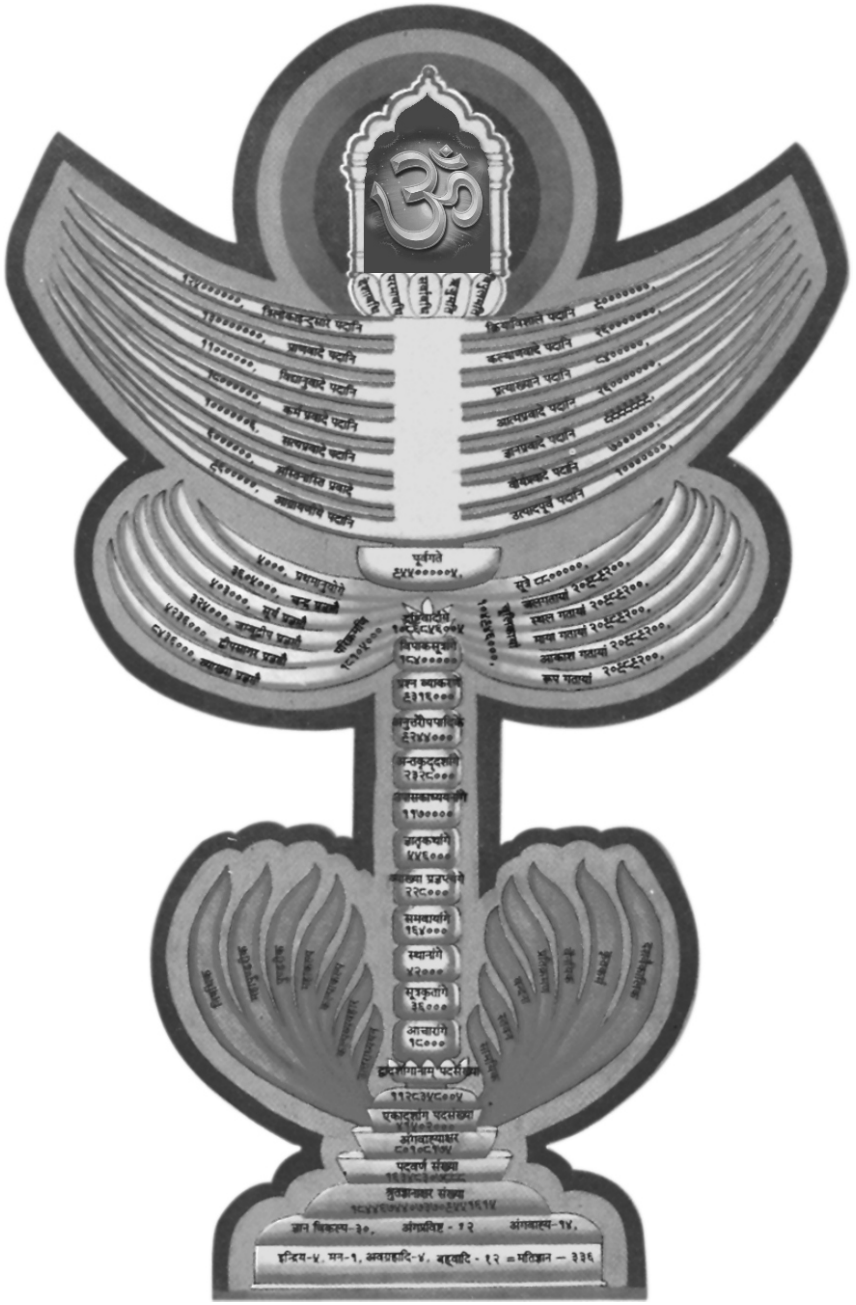

दृष्टिवाद अंग के, अग्रायणी पूर्व के, पाँचवें वस्तु अधिकार के, महाकर्मप्रकृति नामक चौथे प्राभृत का ज्ञान, आचार्य धरसेन को था; जिसे उन्होंने अपने शिष्य भूतबली और पुष्पदन्त नामक मुनिराजों को पढ़ाया। उक्त ज्ञान को भूतबली और पुष्पदंत ने षट्खण्डागम में निबद्ध किया। उसकी टीका आचार्य वीरसेन ने धवला, जयधवला के रूप में लिखी। इनके आधार पर आचार्य नेमिचन्द्र ने गोम्मटसारादि ग्रन्थों की रचना की। इसप्रकार प्रथम श्रुतस्कंध की उत्पत्ति हुई।

इसी समय दूसरे एक गुणधर नामक मुनिराज को, ज्ञानप्रवाद पूर्व के, दसवें वस्तु अधिकार में से तीसरे प्राभृत का ज्ञान था। उनसे उक्त प्राभृत को नागहस्ति नामक मुनिराज ने पढ़ा। उक्त दोनों मुनिराजों से यतिनायक नामक मुनिराज ने पढ़कर उसकी चूर्णिका रूप में छह हजार सूत्रों की रचना की।

इसकी टीका समुद्धरण नामक मुनिराज ने बारह हजार श्लोक प्रमाण लिखी। इन आचार्यों की परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द इन शास्त्रों के ज्ञाता हुए। उन्होंने समयसारादि ग्रन्थ बनाये। इसप्रकार द्वितीय श्रुतस्कंध की उत्पत्ति हुई।

इसप्रकार बारहवें अंग का कुछ ज्ञान ही आज हमें उपलब्ध है। शेष ज्ञान विलुप्त ही है। यद्यपि मतिज्ञान के समान श्रुतज्ञान भी पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक सभी संसारी जीवों के होता है, जिनमें एकेन्द्रियादिक जीव भी आ जाते हैं; तथापि यहाँ द्वादशांगरूप सम्यग्श्रुतज्ञान की चर्चा ही की गई है।।२०।।

अवधिज्ञान

अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है - १. भवप्रत्यय और २. गुणप्रत्यय।

आयुकर्म के उदय के निमित्त से उत्पन्न होनेवाली जीव की पर्याय को भव कहते हैं।

जिस अवधिज्ञान में मुख्यरूप से भव ही कारण (निमित्त) हो, उसे **भवप्रत्यय** अवधिज्ञान कहते हैं और जिसमें मुख्यरूप से क्षयोपशम ही कारण (निमित्त) हो, उसे **गुणप्रत्यय** अवधिज्ञान कहते हैं।

यद्यपि भवप्रत्यय अवधिज्ञान में भी अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है; क्योंकि अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम बिना तो अवधिज्ञान संभव ही नहीं है; तथापि **देवायु और नरकायु के साथ अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम नियम से होता है; इसकारण भव को मुख्य करके इसका नाम भवप्रत्यय रखा गया है।**

जिसप्रकार पक्षियों के जन्म से ही आकाश गमन देखा जाता है; उसीप्रकार देव

और नारकियों के जन्म से ही अवधिज्ञान पाया जाता है। यही कारण है कि उनके अवधिज्ञान को भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहा जाता है।

मनुष्य और तिर्यंचों में बहुत कम जीवों को अवधिज्ञान होता है। यही कारण है कि **मनुष्य और तिर्यंचों को होनेवाले अवधिज्ञान को क्षयोपशमनिमित्तक कहा गया है।**

अवधिज्ञान के संबंध में तत्त्वार्थसूत्र में दो सूत्र प्राप्त होते हैं, जो इसप्रकार हैं -

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।।२१।।

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ।।२२।।

भवप्रत्यय नामक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।

शेष जीवों अर्थात् मनुष्य और सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को होनेवाला क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकार का है - अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित।

इनका संक्षिप्त स्वरूप इसप्रकार है -

१. अनुगामी - जो अवधिज्ञान सूर्य के प्रकाश की तरह दूसरे भव या क्षेत्र में भी जीव के साथ बना रहे, उसे अनुगामी अवधिज्ञान कहते हैं।

२. अननुगामी - जो अवधिज्ञान दूसरे भव या क्षेत्र में जीव के साथ नहीं जाता, उसे अननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं।

३. वर्धमान - जो अवधिज्ञान शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की भाँति बढता रहता है, वह वर्द्धमान अवधिज्ञान है।

४. हीयमान - जो अवधिज्ञान कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की भाँति घटता रहता है, वह हीयमान अवधिज्ञान है।

५. अवस्थित - जो अवधिज्ञान सूर्य या मनुष्य के शरीर पर स्थित तिल के समान एकसा रहता है, न घटता है, न बढता है; वह अवस्थित अवधिज्ञान है।

६. अनवस्थित - जो अवधिज्ञान हवा से जल की तरंगों की भाँति घटता-बढता रहता है, वह अनवस्थित अवधिज्ञान है।

उक्त संदर्भ में जानने योग्य विशेष बात यह है कि मनुष्यों में तीर्थंकरों को भी जन्म से ही अवधिज्ञान होता है; अतः एक अपेक्षा से उसे भी भवप्रत्यय कह सकते हैं।

तीर्थंकरों के अवधिज्ञान को भवप्रत्यय कहने पर; गुणप्रत्यय अवधिज्ञान को तीर्थंकरों को छोड़कर शेष मनुष्यों और तिर्यंचों के ही मानना होगा। तिर्यंचों में यह अवधिज्ञान मात्र सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के ही होता है और मनुष्य तो सभी सैनी पंचेन्द्रिय ही होते हैं।।२१-२२।।

मन:पर्ययज्ञान

मति, श्रुत और अवधिज्ञान की चर्चा के उपरान्त अब तीन सूत्रों में **मन:पर्ययज्ञान की चर्चा करते हैं।**

मन:पर्ययज्ञानसंबंधी प्रथम सूत्र इसप्रकार है –

ऋजुविपुलमती मन:पर्यय: ।।२३।।

मन:पर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है।

ऋजुमति – जो ज्ञान मन, वचन, काय की सरलता से चिन्तित दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थों को जानता है; उसे ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान कहते हैं।

विपुलमति – जो सरल तथा कुटिलरूप से चिन्तित दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थों को जानता है; वह विपुलमति मन:पर्ययज्ञान है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि मन में स्थित रूपी पदार्थ से क्या आशय है; क्योंकि मन में तो विचार आते हैं, विकल्प उठते हैं। क्या वे विचार या विकल्प रूपी हैं?

उत्तर – हाँ, वे विचार और विकल्प रूपी हैं। यह बात तो इसी से सहजसिद्ध हो रही है कि मन:पर्ययज्ञान का विषय रूपी पदार्थ है और वह मात्र दूसरे के मन में स्थित पदार्थ को जानता है।

यह तो जगप्रसिद्ध बात है कि मन में तो विकल्प ही उठते हैं, विचार ही आते हैं। अत: यह सिद्ध ही है कि वे विचार और विकल्प रूपी पदार्थ ही हैं।।२३।।

ऋजुमति और विपुलमति में अन्तर

ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करने के उपरान्त अब **उनमें परस्पर क्या अन्तर है ?** – यह स्पष्ट करते हैं।

तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार है –

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष: ।।२४।।

परिणामों की विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा दोनों में अन्तर है।

मन:पर्ययज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से आत्मपरिणामों में होने वाली निर्मलता को विशुद्धि कहते हैं। गिरने (छूटने) का नाम प्रतिपात है और नहीं गिरने (नहीं छूटने) का नाम अप्रतिपात है।

ऋजुमति से विपुलमतिज्ञानवाले के परिणामों में अधिक विशुद्धि होती है और ऋजुमति होकर छूट जाता है या छूट सकता है; पर विपुलमतिवाला कभी भी नीचे की

ओर नहीं जाता। वह जबतक केवलज्ञान न हो जाय, तबतक नहीं छूटता। **केवलज्ञान होने पर तो चारों ही क्षयोपशमज्ञान छूट जाते हैं।**

इसतरह यह सुनिश्चित हुआ कि केवलज्ञान होने के पहले नहीं छूटना ही **अप्रतिपात** है और केवलज्ञान नहीं होने पर भी छूट जाना प्रतिपात है। इसप्रकार **विपुलमति अप्रतिपाती है और ऋजुमति प्रतिपाती** ज्ञान है।

विपुलमति मन:पर्ययज्ञान तद्भव मोक्षगामियों के ही होता है; पर ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान तद्भव मोक्षगामी के भी हो सकता है और उन्हें भी हो सकता है, जो तद्भव मोक्षगामी नहीं हैं।

इसीप्रकार विपुलमति ज्ञानवाला क्षपकश्रेणी का आरोहण करता है; पर ऋजुमतिवाला क्षपकश्रेणी और उपशमश्रेणी दोनों पर चढ़ सकता है। यह भी हो सकता है कि वह श्रेणी चढ़े ही नहीं।।२४।।

अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में अन्तर

ऋजुमति और विपुलमति में अन्तर स्पष्ट करने के बाद अब **अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में क्या अन्तर है ?** – यह स्पष्ट करते हैं।

तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार है –

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमन:पर्याययो: ।।२५।।

विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान – दोनों में परस्पर अन्तर है।

१. अवधिज्ञान से मन:पर्ययज्ञान अधिक विशुद्धिवाला है।

२. मन:पर्ययज्ञान मात्र मानुषोत्तर पर्वत के भीतर अर्थात् ढाई द्वीप के भीतर की ही बात जानता है; जबकि अवधिज्ञान का क्षेत्र सर्व लोक है।

३. मन:पर्ययज्ञान छठवें गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक प्रवर्द्धमान उत्कृष्ट चारित्रवाले जीवों के ही पाया जाता है; जबकि अवधिज्ञान चारों गतियों के सभी सैनी पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि जीवों को भी हो सकता है।

विभंगावधि या कु-अवधिज्ञान चारों गतिवाले सैनी पंचेन्द्रियों को हो सकता है।

४. अवधिज्ञान का विषय; द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा में सभी रूपी (पुद्गल) पदार्थ और उनकी कुछ पर्यायें हैं।

मन:पर्ययज्ञान का विषय भी रूपी पदार्थ ही हैं; परन्तु वह पदार्थ अवधिज्ञान के विषय से अनन्तवाँ भाग सूक्ष्म (पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा) मात्र दूसरे के मन में स्थित विकल्प हैं, विचार हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा बहुत अन्तर है।।२५।।

पाँचों ज्ञानों के विषय

यद्यपि अब यहाँ केवलज्ञान की चर्चा प्रसंग प्राप्त है; तथापि दशवें अध्याय में मोक्ष तत्त्वार्थ की चर्चा में केवलज्ञान का स्वरूप विस्तार से स्पष्ट होगा ही; इसलिए यहाँ उसे छोड़कर **पाँचों ज्ञानों के विषय के संबंध में विचार करते हैं।**

पाँचों ज्ञानों के विषय बतानेवाले चार सूत्र इसप्रकार हैं -

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ।।२६।।

रूपिष्ववधे: ।।२७।।

तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य ।।२८।।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।।२९।।

मति और श्रुतज्ञान यद्यपि सभी द्रव्यों को जानते हैं, जान सकते हैं; परन्तु उनकी सभी सहवर्ती पर्यायों (गुणों) और क्रमवर्ती पर्यायों को नहीं जानते, मात्र कुछ ही पर्यायों को जानते हैं। इसप्रकार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय सभी द्रव्यों की असर्व (कुछ) पर्यायें हैं।

अवधिज्ञान मात्र रूपी (पुद्गल) पदार्थों को ही जानता है; अत: अवधिज्ञान का विषय रूपी पदार्थ पुद्गल और उसकी कुछ पर्यायें हैं।

मन:पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान से अनंतवें भाग सूक्ष्म रूपी पदार्थ को ही जानता है और वह सूक्ष्म रूपी पदार्थ दूसरे के मन में स्थित विकल्प हैं, विचार हैं।

इससे यह बात भी सहज सिद्ध है कि मन में उठनेवाले विकल्प व विचार भी रूपी हैं, पौद्गलिक हैं।

केवलज्ञान सभी द्रव्यों और उनकी त्रिकालसंबंधी सभी सहभावी पर्यायों (गुणों) और क्रमभावी पर्यायों को एक समय में एक साथ अत्यन्त स्पष्टरूप से इन्द्रियादिक के सहयोग के बिना सीधे आत्मा से प्रत्यक्ष जानता है।

यही कारण है कि उसे अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

ध्यान रहे कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान अर्थात् अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष, निश्चय प्रत्यक्ष है।

उक्त पाँच सूत्रों में पाँचों ज्ञान क्या जानते हैं, किस-किस को जानते हैं, कैसे जानते हैं - यह समझाया गया है।

उक्त पाँचों ज्ञानों का विषय क्या है, ज्ञेय क्या है - यह जानने का **मूल प्रयोजन यह है कि यदि हमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करना है, मुक्तिमार्ग पर चलना है, मुक्ति प्राप्त करना है** तो सबसे पहले यह समझ लेना चाहिए कि अभी हमारे पास मति-श्रुतज्ञान है और हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए केवलज्ञान की प्राप्ति करनी है; क्योंकि उसके साथ ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति भी हो जाती है।

अब बचे वे अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान; जो अभी हमें उपलब्ध नहीं हैं। जिस आत्मा को जानने से, उसे निजरूप मानने से, उसमें ही अपनापन स्थापित करने से, उसमें ही समा जाने से; हमें अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है, अनंत दु:खरूप इस भव का अभाव होता है। **उस आत्मा को जानने के काम में तो ये ज्ञान आते नहीं, मात्र इस पौद्गलिक देहरूपी कारागार को जानने, पंचेन्द्रिय विषयों को जानने और दूसरे के मन में स्थित गंदे विचारों, राग-द्वेषरूप सभी विकारी भावों को जानने के काम में ही आते हैं; हमें उन्हें प्राप्त करने से क्या मिलनेवाला है?**

क्या करेंगे उस अवधिज्ञान का; जो मिथ्यादृष्टि पापी नारकियों तक को हो जाता है, हो क्या जाता है, नियम से होता ही है? **क्या करेंगे उस मन:पर्ययज्ञान का; जिन मुनिराजों को वह होता है, वे वीतरागी मुनिराज लगभग जिन्दगी भर उसका उपयोग तक नहीं करते, क्या रस है उन्हें दूसरे के गंदे विचारों को जानने का?**

जो गंदगी, जगत के जीवन में दिखाई देती है, उससे असंख्यगुणी गंदगी लोगों की वाणी में है और उससे भी असंख्यगुणी गंदगी लोगों के मनों में है; जो भय आदि अनेक कारणों से बाहर नहीं आ पाती।

विकल्पों के रूप में मन में रहनेवाली वह गंदगी यदि वाणी में आ जाय तो जगत में कोलाहल मच जाय और यदि क्रिया में आ जाय, जीवन में आ जाय तो प्रलय आ जाये।

यदि ऐसा हो जाये तो बताइये कौन जिन्दा रहेगा और किस माँ-बहिन की इज्जत सुरक्षित रहेगी?

ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसको मारने का भाव किसी न किसी को आजतक न

आया हो, और कौनसी माँ-बहिन हैं, जिसे देखकर किसी न किसी के मन में भोग का भाव न आया हो ? यदि यह सबकुछ क्रिया में आ जाता तो क्या होता - इसकी कल्पना आप कर सकते हैं ?

इतने गंदे मन के भावों को, विचारों को, विकल्पों को ऋद्धिधारी भावलिंगी मुनिराज क्यों देखना चाहेंगे ?

अच्छा ही है कि वे ज्ञान हमें प्राप्त नहीं हैं; अन्यथा वे हमें पौद्गलिक पदार्थों को जानने में ही उलझाये रखते।

आत्मा के कल्याण करने के लिए, आत्मस्वरूप जानने के लिए जिनकी आवश्यकता है; वे मति-श्रुतज्ञान हमारे पास हैं ही। भली होनहार से **मति श्रुतज्ञानावरण का इतना क्षयोपशम भी है कि जिससे आत्मा-परमात्मा को जाना जा सकता है। हम सब सैनी पंचेन्द्रिय हैं। अत: उसका भरपूर उपयोग स्वाध्याय में करना चाहिए।**

इसप्रकार विचार करके, उन अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान के प्रति लालसा से मुक्त होकर, एकमात्र अनंत सुख के साथी उस उत्कृष्ट केवलज्ञान को ही प्राप्त करने की भावनावाले आत्मार्थी जीवों को सबसे पहले उस केवलज्ञान की विषयवस्तु को, उसके स्वरूप को जानने का प्रयास करना चाहिए।

वह केवलज्ञान; इन्द्रिय-मन, प्रकाश आदि के सहयोग के बिना, पूर्णत: स्वतंत्र रहकर, सीधे आत्मा से अलोकाकाश सहित इस लोक में जितने भी पदार्थ हैं; उन सभी को, उनके गुणों को और उनकी द्रव्यपर्याय सहित गुणपर्यायों को, उनमें होनेवाले प्रतिसमय के सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तनों को पूरी तरह स्पष्टरूप से जानता है।

यह तो आप जानते ही हैं कि इस लोक में अनंतानंत जीवद्रव्य और उनसे भी अनंतगुणे अनंतानंत पुद्गलद्रव्य हैं; एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं।

प्रत्येक द्रव्य में अनंतानंत गुण, प्रत्येक गुण में तीन काल के समय के बराबर अनंतानंत पर्यायें होती हैं। इन सबको केवलज्ञान जानता है और एकदम सत्य; जैसी वे हैं या होंगी; ठीक वैसी ही एवं अत्यन्त स्पष्ट जानता है।

केवलज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं-

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गई हैं।
असद्भावी वे सभी पर्याय ज्ञान प्रत्यक्ष है।।

पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गई हैं नष्ट जो।
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो।।[१]

जो पर्यायें उत्पन्न नहीं हुई हैं या उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं; वे सभी अविद्यमान पर्यायें केवलज्ञान में तो प्रत्यक्ष ही हैं।

यदि अनुत्पन्न और नष्ट पर्यायें केवलज्ञान में प्रत्यक्ष न हों तो उस ज्ञान को दिव्य कौन कहेगा ?

उक्त गाथाओं में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि सभी द्रव्यों की जो पर्यायें अभी उत्पन्न नहीं हुईं, वे भविष्य की पर्यायें और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, वे भूतकाल की पर्यायें; केवलज्ञान में अत्यन्त स्पष्टरूप से प्रतिसमय ज्ञात होती रहती हैं।

इसी सूत्र की टीका में आचार्य पूज्यपाद लिखते हैं -

''सभी द्रव्यों की पृथक्-पृथक् तीनों कालों में होनेवाली अनन्तानन्त पर्यायें हैं; इन सबमें केवलज्ञान की प्रवृत्ति होती है। **ऐसा न कोई द्रव्य है और न पर्याय समूह है; जो केवलज्ञान के विषय से परे हो।** केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है। इसी बात का ज्ञान कराने के लिए सूत्र में 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु' कहा है।[२]

केवलज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य अमृतचंद्र लिखते हैं-

''एक ज्ञायक स्वभाव का समस्त ज्ञेयों को जानने का स्वभाव होने से; क्रमश: प्रवर्त्तमान, अनन्त भूत-वर्तमान-भावी विचित्र पर्याय समूह वाले, अगाधस्वभाव और गंभीर समस्त द्रव्य मात्र को - मानो वे द्रव्य **ज्ञायक में उत्कीर्ण हो गये हों, चित्रित हो गये हों; भीतर घुस गये हों, कीलित हो गये हों, डूब गये हों, समा गये हों, प्रतिबिम्बित हो गये हों; इसप्रकार एक क्षण में ही जो शुद्धात्मा प्रत्यक्ष करता है ...।[३]''**

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि केवलज्ञान में भविष्य की सभी पर्यायें जान ली जाती हैं तो फिर वे यह भी जान लेते होंगे कि हम सबका कब, क्या, कैसे होनेवाला है ? यदि हाँ तो फिर हम तो किसी का कुछ कर ही नहीं सकते।

उत्तर - अरे, भाई ! अभी तुम इसी में उलझ रहे हो कि तुम किसी का कुछ नहीं

१. प्रवचनसार, गाथा ३८ व ३९ का हिन्दी पद्यानुवाद
२. सर्वार्थसिद्धि, सूत्र २९ की टीका के अंश का हिन्दी अनुवाद।
३. प्रवचनसार गाथा २०० की तत्त्वप्रदीपिका टीका

कर सकते; बात तो यहाँ तक है कि हम अपना भी कुछ नहीं कर सकते; सबके साथ अपनी पर्यायें भी तो भगवान के केवलज्ञान में ज्ञात हो गई हैं।

हम नहीं मानते ऐसी बातें; जिनमें हम कुछ कर ही न सके।

तुम्हारे मानने, नहीं मानने से कुछ नहीं होता, वस्तु तो जैसी है, वैसी ही रहेगी।

हमें ऐसा केवलज्ञान, ऐसी सर्वज्ञता स्वीकार नहीं है।

अरे, भाई ! हमारे भगवान की, आप्त की, सच्चे देव की परिभाषा यही है कि जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो; वही भगवान है, वही आप्त है, वही सच्चा देव है, वही तीर्थंकर अरहंतदेव हैं।

यदि हमें सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का उपासक बनना है तो उनके सर्वज्ञ स्वभाव को गहराई से समझना होगा, सर्वज्ञता को स्वीकार करना ही होगा; अन्यथा सबकुछ गड़बड़ा जावेगा।

हमारे देव सर्वज्ञ हैं, हमारे शास्त्र सर्वज्ञकथित हैं और हमारे गुरु भी सर्वज्ञ भगवान के बताये मार्ग का अनुसरण करते हैं।

सर्वज्ञता को नहीं मानने से हम सब कुछ गंवा देंगे; क्या आप नहीं जानते कि समस्त जिनागम का आधार एकमात्र सर्वज्ञता ही है।

झूठे कर्त्तृत्व के अभिमान में सर्वज्ञ और सर्वज्ञता से विमुख होना समझदारी का काम नहीं है।

हमारे आचार्य समन्तभद्र ने, अकलंकदेव ने, आचार्यश्री विद्यानंद ने सर्वज्ञता की सिद्धि में जीवन लगा दिया है और आज हम कह रहे हैं कि यदि सर्वज्ञता के स्वीकार करने में हमारे हाथ कुछ नहीं रहेगा तो हम उसे भी तिलांजलि दे देंगे।

अरे, भाई ! ऐसा दुस्साहस कभी नहीं करना। ऐसा आत्मघाती कदम कभी नहीं उठाना, उठाने की सोचना भी नहीं।

हे भगवान ! हमारे शत्रु को भी कभी ऐसी दुर्बुद्धि न आये। हम तो यही कामना करते हैं।

हे आत्मन् ! यदि समझपूर्वक सच्चे दिल से सर्वज्ञता की स्वीकृति हो जावे तो हमारे इस कर्त्तृत्व के अभिमान को चूर-चूर होते देर न लगेगी, सहज अकर्ताभाव जागृत हुए बिना नहीं रहेगा।

अरे, भाई ! जबतक हमें सर्वज्ञता स्वीकृत न होगी; तबतक वह हमें प्राप्त भी कैसे होगी ? यदि हमें सर्वज्ञता प्राप्त करना है तो हमें सहज भाव से सर्वज्ञता को

स्वीकार करना ही चाहिए।

यदि सर्वज्ञता के स्वरूप को गहराई से जानना है तो लेखक की अन्य कृति क्रमबद्धपर्याय एवं आचार्य कुन्दकुन्द कृत प्रवचनसार के ज्ञानाधिकार का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।।२६-२९।।

एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान

पाँचों ज्ञानों के विषय स्पष्ट हो जाने के बाद अब यह बताते हैं कि एक आत्मा में एक साथ कम से कम एक और अधिक से अधिक चार ज्ञान हो सकते हैं। तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार है -

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।३०।।

एक जीव के एक साथ एक से लेकर चार तक ज्ञान हो सकते हैं।

यदि एक ज्ञान होगा तो अकेला केवलज्ञान होगा।

यदि दो ज्ञान हुए तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होंगे।

यदि तीन ज्ञान हुए तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होंगे अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मन:पर्ययज्ञान होंगे।

यदि चार ज्ञान हुए तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान - ये चार ज्ञान होंगे।

पाँच ज्ञान एक साथ किसी जीव के कभी नहीं होते; क्योंकि केवलज्ञान होने के साथ अन्य ज्ञानों की न कोई उपयोगिता ही रहती और ज्ञानावरण के क्षय हो जाने से क्षायोपशमिक ज्ञान रह भी नहीं सकते।

ध्यान रहे इस संसारी जीव को आत्मकल्याण के कार्य में मात्र मति-श्रुतज्ञान ही काम आते हैं; क्योंकि अवधिज्ञान तो मात्र पुद्गल को ही जानता है और मन:पर्ययज्ञान दूसरे के मन की बातों को।

ये दोनों ज्ञान आत्मा को नहीं जानते और आत्मा का हित तो आत्मा को जानने में है, पर को जानने में नहीं।

संसारी जीवों के मन में कोई अच्छी बातें तो रहती नहीं, उनका मन तो सदा गंदे विचारों से ही भरा रहता है, उन गंदे विचारों को जानने से आत्मा को क्या लाभ है ?

उक्त संदर्भ में विगत सूत्रों की व्याख्या में चर्चा विस्तार से हो ही गई है।।३०।।

(क्रमशः)

छहढाला प्रवचन

सम्यक्त्वी की अंतरंग दशा एवं महिमा

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही, पै गृह में न रचैं ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।१५।।
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष वान भवन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी।।१६।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

अज्ञानी लोग मानते हैं कि बिना सम्यग्दर्शन भी हम जो व्यवहार (शुभराग) करेंगे, वह हमें धर्म का या सुख का कारण हो जायेगा। यहाँ शास्त्रकार कहते हैं कि रे भाई ! सम्यग्दर्शन के बिना तो सब करनी दुःख को ही देने वाली है और सम्यग्दर्शन के बाद भी जितनी राग-करनी है, वह तो दुख ही देने वाली है; आत्मा के आनन्दरूप सुख का देने वाला तो सम्यग्दर्शन और वीतरागभाव ही है। देवलोक के वैभव में सुख नहीं है; परन्तु सम्यग्दर्शन में सुख है। देवलोक में जो सम्यग्दृष्टि सुखी हैं, वे सम्यग्दर्शन से सुखी हैं; किन्तु देवलोक का वैभव उनके सुख का कारण नहीं है। वैभव की ओर की वृत्ति में तो दुःख है, आकुलता है।

सम्यग्दर्शन से रहित जीव शुभराग के परिणाम में सुख मान लेता है; वह राग और ज्ञान के भेद को नहीं जानता। 'राग' और 'ज्ञान' अनेक होने पर भी अज्ञान से वह अनेक का एकरूप अनुभव करता है। भाई, तेरा चैतन्यतत्त्व राग से जुदा है, उसे तू जुदा ही जान। चैतन्यभाव का अस्तित्व रागरूप या देहरूप नहीं है। ऐसे चैतन्य की

कीमत अज्ञानी को दिखाई नहीं देती, उसे तो शुभराग की या देह की क्रिया कीमत वाली दिखाई देती है; किन्तु वास्तव में तो वे सब क्रियाएँ थोती हैं; भैया ! उनमें कहीं तेरा धर्म नहीं है।

सम्यग्दर्शन होते ही भव से रहित अपना आत्मा प्रतीति में आया; चैतन्यतत्त्व रागरहित आनन्द से परिपूर्ण अनुभव में आया; अब उसे भव के भाव का आदर नहीं रहा, एक-दो भव शेष हों; किन्तु उसे वह हेय जानता है। सम्यग्दर्शन के सिवाय अन्य कोई सुखदायक नहीं है। 'अन्य' कहने से सम्यग्दर्शन से रहित अन्य समझना; किन्तु सम्यग्दर्शन से सहित सम्यग्ज्ञान-चारित्र तो सुखदायक है ही। चारित्रदशा में तो बहुत विशेष आत्मसुख है; किन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है; सम्यग्दर्शन के बिना चारित्रदशा कभी नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन से रहित ज्ञान मिथ्याज्ञान है और आचरण मिथ्याचारित्र है, उनमें कहीं सुख का लवलेश नहीं। सर्व दुख का मूल मिथ्यात्व है और सर्व सुख का मूल सम्यक्त्व है।

प्रश्न – क्या यह सच है कि मिथ्यादृष्टि जीव नरक में ही जाते हैं ?

उत्तर – नहीं; मिथ्यादृष्टि जीव अपने-अपने पुण्य-पाप अनुसार चारों गति में जाते हैं, स्वर्ग में भी वे जाते तो हैं; किन्तु स्वर्ग में भी उन्हें सुख नहीं मिलता। अज्ञान से वे अपने को भले सुखी मान लें; परन्तु सुख कहाँ है और कैसा है, उसे वे जानते ही नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव पाप करके नरक में जाये या पुण्य करके स्वर्ग में भी जाये (नरक से असंख्यातगुने स्वर्ग के भव हैं) किन्तु यह सब है तो संसार ही, उनमें कहीं भी वे जीव सुखी नहीं होते। सुखिया तो सम्यग्दृष्टि हैं कि जिन्होंने चार गति से पार – ऐसे अपने चैतन्यतत्त्व को देख लिया है।

दुनिया के लोग धन आदि के संयोग अनुसार सुख समझते हैं, आत्मिक सुख को वे नहीं जानते। वे लोग यह नहीं पूछते कि आपको कितना आत्मसुख है? परन्तु यह देखते हैं कि आपके पास कितना धन-मकान है ? कितनी आय है? मानो अधिक पैसे से अधिक सुख मिल जाता है और पैसे के बिना मानो सुख हो ही नहीं सकता – ऐसी अज्ञानी लोगों की भ्रांति है। दुनिया तो बाहर से ही देखने वाली है।

अरे, शुभ विकल्प भी जहाँ दुःख है, उसमें भी सुख नहीं है, तब अन्य की तो क्या बात? बिना सम्यग्दर्शन सुख देने वाला कोई नहीं है। कोई संयोग ऐसा नहीं कि जो सुख दे सकता हो। सम्यक्त्व ही सभी धर्म का मूल है; 'सभी धर्म' कहने से ऐसा

नहीं समझना चाहिए कि जैनधर्म एवं अन्य धर्म; किन्तु सभी धर्म कहने से आत्मा का ज्ञानधर्म-चारित्रधर्म-श्रावकधर्म-मुनिधर्म-सुखधर्म क्षमादि दशधर्म-वीतरागी अहिंसा धर्म; – ऐसे वीतरागी शुद्धभावरूप सभी धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है; क्योंकि 'धर्मी' ऐसा अपना शुद्ध आत्मा, उसके लक्ष्य-प्रतीत-अनुभव के बिना उसके धर्म (शुद्ध पर्यायें) प्रगट नहीं होते। सम्यग्दर्शन में शुद्धात्मा को ध्येय बनाकर एकाग्र होने से श्रावकधर्म-मुनिधर्म-उत्तम क्षमादि धर्म-शुद्धोपयोग धर्म-परम अहिंसा धर्म-ध्यानरूप धर्म-सुख धर्म-स्वानुभवरूप धर्म-मोह क्षोभ रहित परिणामरूप धर्म – ये सब वीतरागी धर्म खिल जाते हैं। अतः धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन के बिना जीव जो कुछ करे, वह धर्म नहीं, उसमें सुख नहीं।

आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना ध्यान किसका करेगा ? ध्यान के लिए जिसमें एकाग्र होना है – वह वस्तु तो प्रतीति में आयी ही नहीं। उसीप्रकार 'स्वरूप में चरना, सो चारित्र' है; परंतु जिस स्वरूप में चरना है, उसकी पहिचान बिना कैसा चारित्र ? वीतरागता करना चाहे; परन्तु राग से भिन्न चैतन्य के अनुभव बिना वीतरागता कैसे होगी ? राग से लाभ मानने पर वीतरागता कभी नहीं हो सकती। इसप्रकार सम्यग्दर्शन और स्वानुभव के बिना जीव को किसी प्रकार का धर्म या मोक्षमार्ग नहीं होता। जैसे मूल के बिना वृक्ष नहीं होता, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता। ऐसे ही अज्ञान से धर्म मान लेना तो मिथ्या है। जानने वाले ने जब स्वयं को ही नहीं जाना तो धर्म कैसा ?

प्रत्येक आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकता है; उसे न जानकर, अन्य परमात्मा ने इस आत्मा को बनाया – ऐसा माने अथवा यह आत्मा अन्य किसी परमात्मा का अंश है – ऐसा माने, (अर्थात् यह आत्मा स्वयं अखण्ड स्वतंत्र अकृत्रिम पदार्थ है – ऐसा न माने,) वे सब अज्ञानी हैं, उन्होंने न तो आत्मा का स्वरूप जाना है और न परमात्मा को पहचाना है। ऐसे जीवों को सम्यक्त्व नहीं होता और सम्यक्त्व के बिना धर्म नहीं होता।

अतः मुमुक्षु जीव अपने सुख के लिए देव गुरु-धर्म का स्वरूप अच्छी तरह पहचाने, सर्वप्रकार के सन्देह छोड़कर वीतराग जैनमार्ग के तत्त्वों का सच्चा निर्णय करे और पर से भिन्न अपने चिदानंदस्वरूप आत्मतत्त्व की रुचि-प्रतीति-स्वानुभूति करके शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करे – यह सन्तों का उपदेश है। ●

नियमसार प्रवचन –

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की गाथा 51-55 पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है –

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं।।५१।।
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगमभावो णाणं हेयोवादेयतच्चाणं सम्मत्तं।।५२।।
सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी।।५३।।
सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहारणिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि।।५४।।
ववहारणयचरित्ते ववहारणयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छयणयचारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो।।५५।।

(हरिगीत)

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
विभरम संशय मोह विरहित ज्ञान ही सद्ज्ञान है।।५१।।
चल मल अगाढ़पने रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।
आदेय हेय पदार्थ का ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।। ५२।।
जिन सूत्र समकित हेतु पर जो सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
वे अंतरंग निमित्त हैं दृग मोह क्षय के हेतु से।। ५३।।
सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान पूर्वक आचरण है मुक्तिमग।
व्यवहार-निश्चय से अतः चारित्र की चर्चा करूँ।।५४।।
व्यवहारनय चारित्र में व्यवहारनय तपचरण हो।
नियतनय चारित्र में बस नियतनय तपचरण हो।।५५।।

विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है; संशय विमोह और विभ्रम रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

चलता, मलिनता और अगाढता रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है; हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है; जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को (सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।

सुन, मोक्ष के लिये सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, चारित्र (भी) होता है, इसलिये मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा।

व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है; निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है।

(गतांक से आगे ...)

सम्यग्दर्शन में ज्ञानी धर्मात्माओं को ही अन्तरंग निमित्त क्यों कहा?

उपर्युक्त कथन से यह निश्चित हुआ कि अज्ञानी जीव जिसप्रकार धर्म प्राप्ति में निमित्त नहीं होते, उसीप्रकार अकेले शास्त्र भी निमित्त नहीं होते। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को एकबार चैतन्यज्ञानी के निमित्त का योग अवश्य होना चाहिए। यहाँ पराधीनता की बात नहीं है, किन्तु निमित्त का ज्ञान कराने का प्रयोजन है।

सम्यग्ज्ञान होने पर स्व-पर प्रकाशक स्वभाव प्रकट होता है, तब स्व को जानने के साथ पर-प्रकाशक ज्ञान में ऐसे निमित्त होते हैं – यह भी जान लेता है। केशर खरीदते समय बारदाना डिब्बी के रूप में ही होगा, कहीं टाट के बोरे के रूप नहीं होगा। डिब्बी से केशर आ जाती हो – ऐसा तो है नहीं, परन्तु केशर लेने जाते समय बारदाना डिब्बी का ही होगा। उसीप्रकार धर्मदशा प्रकट होते समय धर्मी चैतन्य आत्मा निमित्त होगा, तथापि वह धर्म प्राप्त करायेगा – ऐसा यहाँ बताना नहीं है, यहाँ तो निमित्त की पहचान कराई है।

ज्ञानी पुरुषों को अन्तरंग हेतु कहने का कारण यह है कि उन्होंने दर्शनमोह का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम कर लिया है। आत्मा का अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन की पात्रता हुई हो, ऐसे जीव को वीतरागी वाणी तथा उसका रहस्य समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किये हुए ज्ञानी पुरुष अन्तरंग निमित्त होते हैं। ज्ञानी पुरुषों के कथन

का आशय सामने उपस्थित धर्म प्राप्त करनेवाला जीव पकड़ना है, इसलिए ज्ञानी को अन्तरंग निमित्त कहा है।

५४वीं गाथा में निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की बात कहते हैं। प्रथम दो गाथाओं में देव-शास्त्र-गुरु आदि की विकल्पवाली श्रद्धा वगैरह व्यवहारसम्यक्त्व की बात की थी, तीसरी में निमित्त का ज्ञान कराया था; अब इस गाथा में निश्चयसम्यक्त्व की बात करते हैं। ज्ञानस्वभावी आत्मा की श्रद्धा करना वह निश्चयसम्यग्दर्शन है, आत्मा का ज्ञान वह निश्चय-सम्यग्ज्ञान है और आत्मा में स्थिरता वह निश्चयचारित्र है। इसप्रकार का सम्यग्दर्शन जिसको प्रकट हुआ हो उसको निश्चयसम्यग्दर्शन होता है और जिसको ऐसी पात्रता होती है, उसको ज्ञानी का निमित्त मिले बिना रहता नहीं।

अब व्यवहार और निश्चयचारित्र की बात करते हैं।

मुनि के छठे गुणस्थान में पाँच महाव्रतादि के विकल्पवाला भाव वर्तता है, सम्यग्दर्शन है तथा चारित्रदशा भी प्रकटी है; किन्तु सातवीं भूमिका की निर्विकल्पदशा हुई नहीं है और शुभराग है, उसको व्यवहारनय का तपश्चरण कहा है; तथा शुद्धस्वभाव की दृष्टि से निर्विकल्पदशा में जो ठहरना है – वह निश्चयतपश्चरण है।

पंचपरमेष्ठी के प्रति भक्ति तथा विपरीततारहित पदार्थों की श्रद्धा व्यवहारसम्यग्दर्शन है।

यह रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। यहाँ प्रथम व्यवहार की बात करते हैं, परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि व्यवहार पहले है और निश्चय बाद में। साधक जीव को निश्चय का भान है, अखण्ड ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान है; किन्तु जब अपने स्वभाव में स्थिर नहीं हो पाता तब विकल्पवाला शुभराग कैसा होता है, उस व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं, निश्चयसम्यक्त्व प्रकट हुए जीव को व्यवहारश्रद्धा कैसी होती है – वह बताते हैं। भगवान सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त अन्य किसी कुदेवादि में उसे श्रद्धा होती नहीं, पंचपरमेष्ठी के प्रति विपरीत अभिप्रायरहित सच्ची श्रद्धा होती है, वही श्रद्धा मोक्ष की सिद्धि का परम्परा हेतु है। जीव को अपने कारणपरमात्मा की श्रद्धा है और उसी के आश्रय से मोक्ष प्राप्त होगा, इसलिए पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा के राग को व्यवहार से परम्परा हेतु कहा है; तथा भगवान द्वारा कथित स्वरूप सम्बन्धी श्रद्धा में उसको कुछ भी दोष नहीं होता; भगवान ने स्वरूप कहा वैसे ही होगा, अथवा अन्य प्रकार से होगा – ऐसी चंचलता, मलिनता अथवा अगाढ़ता रहित श्रद्धान उसके होता है।

रागी-द्वेषी अनेक प्रकार के देवों द्वारा प्ररूपित स्वरूप विपरीत है, ऐसे विपरीत अभिप्राय का उसके अभाव है। अन्यमत कथित सत्य है या भगवानजिनेन्द्र कथित सत्य है – इसप्रकार जो डाँवाडोल है उसके तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। भगवान कथित स्वरूप की जिसे अडिग श्रद्धा है और उसमें किंचित् भी दोष नहीं – ऐसा जीव यदि निश्चय सम्यग्दर्शन प्रकट करे तो उसकी रागवाली श्रद्धा को व्यवहारसम्यक्त्व कहते हैं।

संशय, विपरीतता और अजानपना के दोषरहित पदार्थों का ज्ञान व्यवहारसम्यग्ज्ञान है।

यहाँ व्यवहारसम्यग्ज्ञान की बात चलती है, वह भी त्रिदोषरहित होना चाहिए। वीतराग सच्चा देव है अथवा अन्यमत में कथित देव सच्चा है – ऐसी मान्यता वह शंका दोष है। भगवान कथित अनेकान्त स्वरूप से विपरीत ज्ञान करना और एकान्तक्षणिक आदि कहनेवाले बुद्धादि के कहे पदार्थों का ज्ञान करना और उसको सम्यग्ज्ञान जानना वह विमोह दोष है। वस्तुस्वरूप से अजानपना वह विभ्रम दोष है। जो जीव आत्मज्ञान प्रकट करते हैं, उनका उपर्युक्त तीनों दोषों से रहितज्ञान व्यवहारसम्यग्ज्ञान है।

हिंसादि से निवृत्ति के परिणाम और अट्ठाईस मुलगुण का पालन व्यवहारचारित्र है।

अब, व्यवहारचारित्र का कथन करते हैं। जिस मुनि को आत्मभान है और स्वरूप की अन्तर्लीनता वर्तती है, ऐसे जीव को विकल्पात्मक दशा में हिंसा से निवृत्ति के परिणाम तथा अट्ठाईस मूलगुणों का पालन होता है। पंचमहाव्रतादि के पालन को व्यवहारचारित्र कहते हैं।

इसप्रकार भेदोपचार रत्नत्रय परिणति होती है।

यह व्यवहार का अधिकार यहाँ शुद्धभाव में क्यों डाल दिया ?– ऐसा कोई प्रश्न करे तो उससे कहते हैं कि वह यथास्थान ही रखा गया है। जो जीव अनादि-अनन्त शुद्धभाव के आधार से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट करता है, उसे विकल्पात्मक दशा में कैसे विकल्प होते हैं और उन विकल्पों में कौन निमित्त होता है – वह बताते हैं। राग के समय श्रद्धा पंचपरमेष्ठी की ही होती है, ज्ञानी की वीतरागी वाणी ही सुनता है, उसका शास्त्रज्ञान भी दोष रहित होता है; अज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं होती; इसप्रकार निश्चय के साथ व्यवहार और निमित्त का सुमेल कैसा होता है वह बराबर बताने में आया है, इसलिए यहाँ शुद्धभाव में व्यवहार का कथन यथास्थान – यथावसर है। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : धर्मी साधकजीव राग का वेदक है या ज्ञाता है ?

उत्तर : साधकजीव का ज्ञान राग में जाता है, उस दुःख को वेदता है तथा ज्ञान ज्ञान में रहता है, उस सुख को भी वेदता है।

प्रश्न : ज्ञानी दुःख का ज्ञायक है या वेदक है ?

उत्तर : ज्ञानी को दुःख जानने में भी आता है और वेदन भी होता है। जैसे आनन्द का वेदन है; उसीप्रकार जितना दुःख है, उतना दुःख का वेदन भी है।

प्रश्न : क्या सम्यग्दृष्टि भी सर्वज्ञ की तरह राग को मात्र जानता ही है ?

उत्तर : जिसप्रकार सर्वज्ञ को लोकालोक ज्ञेय है, लोकालोक को सर्वज्ञ जानते हैं; उसीप्रकार जिसने सर्वज्ञस्वभावी को दृष्टि में लिया है – ऐसा सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञ के समान राग को जानता ही है। सर्वज्ञ को जानने में लोकालोक निमित्त है; उसीतरह सम्यग्दृष्टि को जानने में राग निमित्त है। सम्यग्दृष्टि राग को करता नहीं है; किन्तु लोकालोक के ज्ञाता सर्वज्ञ की तरह वह राग को जानता ही है। ऐसी वस्तुस्थिति है और ऐसे ही अन्दर से आती है और वैठती है। यह बात तीनकाल तीनलोक में बदल जाय – ऐसी नहीं है। अन्य किसी भी प्रकार से वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती। यह तो अन्दर से ही आई हुई वस्तुस्थिति है।

प्रश्न : ज्ञानी को तो दुःख का वेदन होता ही नहीं है न ?

उत्तर : ज्ञानी को भी जितना राग है, उतना दुःख है तथा जितना कषाय है, उतना दुःख का वेदन भी है। शास्त्र में जो यह कहा है कि ज्ञानी को दुःख का वेदन नहीं है, वह तो श्रद्धा के जोर की – बल की अपेक्षा से कहा है। एक तरफ तो ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में बन्धन है ही नहीं और फिर ऐसा भी कहते हैं कि चौदहवें गुणस्थान तक संसारी है। भाई ! जहाँ जिस अपेक्षा से शास्त्र में कथन किया गया हो, उसे उसी अपेक्षा से समझना चाहिए।

समाचार दर्शन -

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का 125वाँ जन्म जयन्ती महोत्सव सानन्द संपन्न

(1) जयपुर (राज.): ज्ञानतीर्थ टोडरमल स्मारक भवन में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती ज्ञानाराधनापूर्वक मनाई गई और इसी के साथ वर्षभर चलने वाले 125वें जन्म जयन्ती वर्ष के विविध कार्यक्रमों का भव्य शुभारंभ हो गया। ज्ञातव्य है कि इस शृंखला में आगामी एक वर्ष तक जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में गुरुदेवश्री के विचक्षण योगदान को प्रकाशित करने वाले अनेक उच्चस्तरीय आयोजन किये जायेंगे। 1 मई को आयोजित इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि विद्वान वक्ताओं ने गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित जिनवाणी के मार्मिक सिद्धान्तों और गुरुदेवश्री की रीति-नीतियों के बारे में शोधपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के अतिरिक्त पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, श्री सुशीलकुमारजी गोदीका आदि महानुभाव मंचासीन थे।

डॉ. भारिल्ल ने अपने वक्तव्य में कहा कि गुरुदेवश्री द्वारा बताया गया तत्त्वज्ञान जीवन में उतारें एवं उसका जन-जन में प्रचार-प्रसार हो, तभी जन्मजयंती मनाना सार्थक होगा। पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने कहा कि कानजीस्वामी द्वारा बताये क्रमबद्धपर्याय सिद्धांत से हमारा जीवन बदल गया। ब्र. यशपालजी ने कहा कि कानजीस्वामी के सानिध्य के साथ-साथ उनके द्वारा बताया तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ, यह बहुत सौभाग्य की बात है। इनके अतिरिक्त पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित पीयूषजी शास्त्री ने अपने विचार व्यक्त किये साथ ही अनेक विद्यार्थियों ने भी गुरुदेवश्री के प्रति बहुमान का भाव व्यक्त किया।

इस अवसर पर रात्रि में गुरुदेवश्री के जीवन वृत्त पर आधारित 45 मिनिट की फिल्म दिखाई गई। कार्यक्रम का मंगलाचरण पण्डित गोम्मटेशजी चौगुले एवं संचालन पण्डित सोनूजी शास्त्री ने किया।

अ.भा.जैन युवा फैडरेशन शाखा जयपुर महानगर द्वारा-टोडरमल स्मारक भवन में गुरुदेवश्री की 125वीं जन्मजयन्ती गुणानुवाद सभा के रूप में मनाई गई।

इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा **'आत्मानुभव कैसे और कब'** विषय पर रहस्यपूर्ण चिट्ठी के आधार से प्रवचन का लाभ मिला। इसके

अतिरिक्त अन्य वक्ताओं में पण्डित राजेशजी शास्त्री, डॉ. भागचंदजी शास्त्री, पण्डित प्रमोदजी शास्त्री इत्यादि विद्वानों ने गुरुदेवश्री द्वारा बताये तत्त्वज्ञान को जीवन में उतारने एवं जन-जन में प्रचार-प्रसार करने का संकल्प लिया।

सभा के अध्यक्ष पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल एवं मुख्य अतिथि श्री निहालचंदजी जैन जयपुर थे। इसके अतिरिक्त डॉ. श्रीयांसजी सिंघई, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री विनोदकुमारजी जैन कोटा भी मंचासीन थे।

इस अवसर पर जयपुर के सभी स्नातक विद्वान परिवार सहित उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन पण्डित प्रवीणजी शास्त्री, मंगलाचरण पण्डित करणजी शाह ने एवं आभार प्रदर्शन पण्डित संजयजी सेठी ने किया।

(2) देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी का 125वां जन्म जयन्ती महोत्सव उपकार दिवस के रूप में दिनांक 17 से 21 अप्रैल तक बहुत उत्साहपूर्वक मनाया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के भगवान आत्मा की 47 शक्तियों पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र. हेमचंदजी हेम देवलाली, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला।

इस अवसर पर तीनलोक मण्डल विधान का भी आयोजन किया गया।

उपकार दिवस के आमंत्रणकर्ता श्री बेलजी रायशीभाई शाह परिवार हस्ते दिलीपभाई शाह मुम्बई थे। आमंत्रणकर्ता परिवार के अनेक सदस्यों के अतिरिक्त लगभग 300-400 साधर्मियों ने संपूर्ण कार्यक्रम में उपस्थित रहकर धर्मलाभ लिया।

विधि-विधान के कार्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री ने संपन्न कराये।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की जन्मजयन्ती तिथि के अनुसार दिनांक 28 अप्रैल से 2 मई तक मनाई गई।

इस अवसर पर ब्र. हेमचंदजी हेम देवलाली, ब्र. कैलाशचंदजी अचल ललितपुर एवं पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के प्रवचनों का लाभ मिला।

(3) इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन द्वारा दिनांक 26 अप्रैल को रवीन्द्र नाट्य गृह में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्म जयन्ती अत्यंत हर्ष और उल्लास के साथ मनाई गई।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली आदि विद्वानों के अतिरिक्त श्री रसिकलाल माणकचंद धारीवाल पूना, श्री मुकेशजी जैन इन्दौर, श्री कविनभाई पारीख मुम्बई, श्री प्रवीणभाई वोरा

मुम्बई, श्री अशोकजी घीया मुम्बई, श्री विपिनभाई बादर जामनगर, श्री अजितजी बड़ौदा, श्री सुनीलजी जैन 501 भोपाल, श्री अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर, श्रीमती शोभा धारीवाल पूना इत्यादि अनेक महानुभाव उपस्थित थे।

कार्यक्रम के प्रारंभ में मंगल गायन व गुरुदेवश्री के जीवन पर आधारित वीडियो दिखाया गया। अतिथियों के सम्मान एवं मंगलाचरण के उपरान्त पण्डित अभयजी शास्त्री द्वारा गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का परिचय दिया गया।

इस अवसर पर डॉ. भारिल्ल ने स्वामीजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए क्रमबद्धपर्याय और त्रिकालीध्रुव भगवान आत्मा जैसे विषयों पर प्रकाश डाला।

(4) दिल्ली : यहाँ श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द कहान आत्मार्थी ट्रस्ट में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयंती के अंतर्गत अष्टम आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, श्री बीस तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र विधान एवं आत्मार्थी कन्या विद्या निकेतन का तृतीय दीक्षांत समारोह दिनांक 30 मार्च से 6 अप्रैल तक अनेक विशेषताओं सहित सानन्द संपन्न हुआ।

इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित रजनीभाई हिम्मतनगर, पण्डित सुबोधजी सिवनी, ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली एवं विदुषी राजकुमारी जैन दिल्ली के प्रवचनों का लाभ मिला। इसके अतिरिक्त आत्मार्थी कन्याओं द्वारा प्रवचन एवं बालकक्षाओं का भी आयोजन किया गया।

5 अप्रैल को रात्रि में विद्या निकेतन का तृतीय दीक्षांत समारोह हुआ। दिनांक 6 अप्रैल को गुरुदेवश्री की 125वीं जन्म जयंती उपकार दिवस के रूप में अत्यंत उल्लासपूर्वक मनाई गई।

शिविर में श्री नरेन्द्रजी, श्री विमलकुमारजी जैन, श्री नरेशजी लुहाड़िया, श्री सुमतिकुमारजी सेठिया, श्री जयपालजी जैन एवं श्री वज्रसेनजी जैन आदि का पूर्ण सहयोग रहा। कार्यक्रम में लगभग 500 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

विधि-विधान के समस्त कार्य श्री अशोकजी उज्जैन एवं पण्डित रमेशजी गायक द्वारा संपन्न हुये।

प्रवेश फार्म शीघ्र भेजें

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.) की अगस्त 2014 में आयोजित होने वाली ग्रीष्मकालीन परीक्षा के खाली छात्र प्रवेश फार्म संबंधित सभी परीक्षा केन्द्रों को भेजे जा चुके हैं। अत: शीघ्रताशीघ्र उन्हें भरकर भिजवा देवें।

कदाचित् डाक की गड़बड़ी से जिन्हें प्रवेशफार्म नहीं पहुंचे हों, कृपया तत्काल सूचना कर मंगवा लेवें। **– ओ.पी.आचार्य –प्रबंधक, परीक्षा बोर्ड कार्यालय, जयपुर**

बाल शिक्षण शिविर संपन्न

देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ प्रभाकरभाई प्रभुदास कामदार परिवार की ओर से दिनांक 20 से 27 अप्रैल तक बाल शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

शिविर का संयोजन पण्डित विरागजी शास्त्री एवं पण्डित अभिषेकजी शास्त्री जोगी नासिक ने किया। शिविर में लगभग 350 बच्चों ने लाभ लिया।

शिविर में आयोजित शिक्षण कक्षाओं में पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित आशीषजी शास्त्री टीकमगढ, पण्डित देवांग गाला शास्त्री, पण्डित जितेन्द्रजी शास्त्री सिंगोड़ी, विदुषी जयती बेन, विदुषी जीनलबेन एवं श्रीमती स्वस्ति-विराग जैन का महत्वपूर्ण सहयोग रहा।

कार्यक्रम में श्री वीनूभाई, उल्लासभाई व भरतभाई शाह मुम्बई का उल्लेखनीय योगदान रहा।

वेदी प्रतिष्ठा संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ आमेर स्थित श्री दिगम्बर जैन दीवान भदीचंदजी के मंदिर में दिनांक 20 अप्रैल 2014 को वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रात: घटयात्रा पूर्वक नवनिर्मित वेदी की शुद्धि की गई। तथा नित्य-नियम पूजन एवं यागमण्डल विधान पूर्वक नवीन वेदी पर जिन-प्रतिमाएं विराजमान की गईं।

महोत्सव में भगवान पद्मप्रभ, भगवान मल्लिनाथ, भगवान नेमिनाथ एवं भगवान पार्श्वनाथ की दो प्रतिमाएं - इसप्रकार कुल 5 प्रतिमाएं विराजमान हुई।

संपूर्ण आयोजन का निर्देशन एवं विधि-विधान आदि के समस्त कार्य डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा संपन्न हुये। महोत्सव में डॉ. सुरेन्द्रकुमारजी साह दीवान, श्री कैलाशचंदजी आबूजी वाले एवं श्री राजकुमारजी शाह का सक्रिय सहयोग रहा।

मनोहरलालजी काला नहीं रहे

इन्दौर (म.प्र.) निवासी श्री मनोहरलालजी काला का दिनांक 24 अप्रैल को शांत परिणामों पूर्वक देहावसान हो गया।

आप इन्दौर मुमुक्षु समाज के प्रमुख व्यक्तियों एवं सक्रिय कार्यकर्ताओं में से थे। आप न केवल इन्दौर अपितु पूरे मालवा क्षेत्र में चलने वाली तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की गतिविधियों के आधार स्तम्भ थे। वे विराट व्यक्तित्व के धनी, अनुशासन प्रिय, समय के पाबंद एवं सिद्धांतों से समझौता न करने वाले गुणी व्यक्ति थे। जिनधर्म में वर्णित श्रावक के गुणों को उन्होंने पूर्णत: आत्मसात किया था।

दिनांक 27 अप्रैल को इन्दौर में आयोजित सभा में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के अतिरिक्त ब्र. जतीशचंदजी दिल्ली, श्री अशोकजी बड़जात्या आदि अनेक महानुभवों का भी उद्बोधन हुआ। सभा में सनावद, खंडवा, बड़नगर, उज्जैन, भोपाल, देवास, रतलाम आदि स्थानों से भी विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने अपनी श्रद्धांजलि दी। आपके वियोग से मुमुक्षु समाज को अपूरणीय क्षति हुई है। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट परिवार आपके सद्गति की भावना भाता है।

जैनत्व बाल संस्कार शिविर संपन्न

इन्दौर (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट साधना नगर द्वारा दिनांक 4 से 11 मई तक जैनत्व बाल संस्कार शिविर आयोजित किया गया।

इस अवसर पर पण्डित रीतेशजी शास्त्री सनावद एवं पण्डित अशोकजी शास्त्री राघौगढ के अतिरिक्त टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर, आचार्य अकलंक महाविद्यालय ध्रुवधाम बांसवाड़ा व आचार्य धरसेन दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय कोटा के विद्वानों द्वारा कक्षाओं का लाभ मिला।

इस शिविर में लगभग 700 से अधिक बच्चों ने जैनत्व के संस्कार ग्रहण किये। इस अवसर पर बालबोध पाठमाला से लेकर छहढाला व नयचक्र आदि अनेक विषयों की कक्षाओं का संचालन किया गया।

शिविर में महिला मण्डल व यंग जैन प्रोफेशनल के सभी युवा साथियों का बहुत सहयोग रहा। अन्तिम दिन समापन समारोह के अवसर पर मंच संचालन करते हुए श्री विजयजी बड़जात्या एवं श्री पदमजी पहाड़िया ने सभी का आभार प्रकट किया।

शोक समाचार

(1) सोनगढ (गुज.) निवासी श्री कान्तिभाई भायाणी का दिनांक 24 अप्रैल को 89 वर्ष की आयु में शांतपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया।

आपने गुरुदेवश्री की उपस्थिति में 19 वर्षों तक श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ के मैनेजर के रूप में अपनी सेवाएं दी थीं। परमागम मंदिर प्रतिष्ठा महोत्सव में 108 विशिष्ट सहयोगियों में से एक होने के कारण आपको स्वर्णचन्द्रक प्रदान किया गया था। भारत के दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्रों की छोटी से छोटी बातों को आपने **'श्री दिगंबर जैन तीर्थदर्शन'** नामक पुस्तक में संकलित किया।

(2) करेली (म.प्र.) निवासी श्रीमती गेंदाबाईजी जैन धर्मपत्नी पण्डित कपूरचंदजी जैन (केसलीवाले) का दिनांक 1 मई को धर्म आराधना पूर्वक वैराग्य भावना भाते हुये देहावसान हो गया।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें -
वेबसाईट - www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

देश की राजधानी दिल्ली में प्रथम बार -

शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन संपन्न

दिल्ली : यहाँ दिलशाद गार्डन में रविवार, 18 मई 2014 को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयंती के विशेष अवसर पर देश की राजधानी दिल्ली में प्रथम बार पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित एवं इन्द्रप्रस्थ धर्मांचल शिक्षण प्रशिक्षण शिविर समिति दिल्ली (अन्तर्गत दि. जैन कुन्दकुन्द कहान परमागम मंदिर ट्रस्ट विश्वास नगर दिल्ली) द्वारा आयोजित 18 दिवसीय 48वाँ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन समारोह अत्यंत भव्यता के साथ एवं हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस प्रसंग पर प्रात:काल विशाल जिनेन्द्र शोभायात्रा निकाली गई, जिसमें पूरे हिन्दुस्तान से पधारे हुए युवक-युवतियों और साधर्मियों ने भाग लिया। श्रीजी को रथ में लेकर साथ चलने का सौभाग्य श्री सुनीलकुमार सुरेशकुमार जैन परिवार दिल्ली को तथा सौधर्म इन्द्र बनने का सौभाग्य जिनेन्द्रकुमार मनीषकुमार जैन परिवार दिल्ली को प्राप्त हुआ।

समारोह की अध्यक्षता एवं मंच उद्घाटन श्री अजितप्रसादजी जैन दिल्ली ने किया।

श्री श्री रघुनाथ सहाय सुमतप्रसादजी जैन परिवार (धनौरा वाले),दिल्ली के करकमलों से ध्वजारोहण का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

समारोह में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, ब्र. यशपालजी जैन जयपुर, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जैन जबलपुर, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित अशोकजी लुहाड़िया मंगलायतन, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा आदि विद्वानों के अतिरिक्त श्री पंकजजी जैन आई.ए.एस.(सेक्रेटरी-भारत सरकार), श्री राजीव जैन (आई.ए.एस.), श्री रमाकान्तजी गोस्वामी (पूर्व परिवहन मंत्री, दिल्ली सरकार), डॉ. हर्षवर्धन, श्री संदीपजी दीक्षित, श्री जितेन्द्रसिंह शंटी (विधायक) आदि देश के अनेक विशिष्ट महानुभाव मंचासीन थे।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का परिचय पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने दिया।

कार्यक्रम का मंगलाचरण वी.वि.पाठशाला के छात्रों ने किया। मंगलाचरण के पश्चात् श्री आयोजन कमेटी के पदाधिकारियों ने सभी महानुभावों का स्वागत किया।

इस अवसर पर डॉ. भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में कहा कि अध्यात्म विद्या को संगमरमर के पत्थरों पर खुदवाकर सुरक्षित नहीं किया जा सकता; अपितु कोमलमति बालकों में तत्वज्ञान को प्रतिष्ठित करने पर ही जिनधर्म सुरक्षित रह सकता है। इसके अतिरिक्त पंकजजी, ब्र. सुमतप्रकाशजी, अजितजी दिल्ली आदि महानुभावों ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

अंत में श्री मंगलसेनजी जैन ने सभी महानुभावों को धन्यवाद ज्ञापित किया।सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन श्रीमती आशा जैन एवं स्थानीय विद्वान विवेकजी शास्त्री ने किया।

मुक्त विद्यापीठ के छात्रों हेतु सूचना

श्री टोडरमल जैन मुक्त विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.) के **प्रथम सेमेस्टर की परीक्षायें जून 2014 के अंतिम सप्ताह में होने जा रही है।** परीक्षा के एक सप्ताह पूर्व (लगभग 25 जून तक) सभी परीक्षार्थियों को एनरोलमेंट नम्बर व प्रश्नपत्र भेज दिए जावेंगे। जिन परीक्षार्थियों ने अभी भी परीक्षा की तैयारी शुरु नहीं की है, वे शीघ्र तैयारी में जुट जावें।

परीक्षा कार्यक्रम निम्नानुसार है -

परीक्षा कार्यक्रम एवं पाठ्यक्रम

द्विवर्षीय विशारद परीक्षा (प्रथम सेमेस्टर)

प्रथम वर्ष (उपाध्याय कनिष्ठ)

1. प्रथम प्रश्नपत्र : वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-1
2. द्वितीय प्रश्नपत्र : छहढाला (70 अंक)+सत्य की खोज (30 अंक)

द्वितीय वर्ष (उपाध्याय वरिष्ठ)

1. प्रथम प्रश्नपत्र : तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-1
2. द्वितीय प्रश्नपत्र : लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका

त्रिवर्षीय सिद्धांत विशारद परीक्षा (प्रथम सेमेस्टर)

प्रथम वर्ष -

1. प्रथम प्रश्नपत्र : गुणस्थान विवेचन
2. द्वितीय प्रश्नपत्र : क्रमबद्धपर्याय (70 अंक) + सामान्य श्रावकाचार (30 अंक)

द्वितीय वर्ष -

1. प्रथम प्रश्नपत्र : समयसार-पूर्वरंग और जीवाजीवाधिकार
2. द्वितीय प्रश्नपत्र : गोम्मटसार कर्मकाण्ड -प्रथम अध्याय

तृतीय वर्ष -

1. प्रथम प्रश्नपत्र : समयसार-कर्ताकर्माधिकार
2. द्वितीय प्रश्नपत्र : गोम्मटसार जीवकाण्ड-गाथा 70 से 215 तक (97 से 112 गाथा छोड़कर)

ध्यान रहे - परीक्षा बोर्ड कार्यालय से जानकारी चाहने हेतु परीक्षार्थी अपना एनरोलमेंट नम्बर का उल्लेख अवश्य करें; ताकि आपके द्वारा चाही गई जानकारी शीघ्र मिल सके।

- ओ.पी.आचार्य (प्रबंधक)

हार्दिक बधाई

खड़ैरी-दमोह (म.प्र.) निवासी चि. सौरभजी शास्त्री पुत्र श्री खेमचंदजी जैन का दिनांक 27 अप्रैल को **बांसा निवासी सौ.का. स्वाति जैन** के साथ शुभविवाह संपन्न हुआ। एतदर्थ जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 500-500/- रुपये प्राप्त हुये।